जनादेश का अनादर करते नेता

पिछले कुछ माह में गोवा, तेलंगाना और कर्नाटक राज्य के विधायकों ने खुलकर दलबदल किया है। इन सभी प्रकरणों में विधायकों ने दो-तिहाई बहुमत का ध्यान रखा। ऐसा करके वे दलबदल विरोधी कानून से बच जाएंगे। भाजपा में शामिल गोवा के एक विधायक ने तो दो माह पहले ही काँग्रेस के टिकट पर चुनाव जीता था। राजनीतिज्ञों का ऐसा करना, राजनीतिक और संवैधानिक नैतिकता के विरुद्ध लगता है।

भारतीय संसदीय चुनाव, राजनीतिक दलों के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। चुनावों में खड़े अधिकांश उम्मीदवारों को उनके दलों के आधार पर चुना जाता है। उसके साथ जुड़ा पार्टी का चिन्ह, चुनाव घोषणा पत्र आदि और उसकी विचारधारा उसकी सहमति के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

यह सत्य है, और इस कारण से किसी नेता का दलबदल करना, घोषणा पत्र और चुनाव प्रक्रिया को दगा देने जैसा है। किसी नेता को यह अधिकार है कि अपने मूल राजनीतिक दल के प्रति विश्वास खत्म होने या अन्य राजनीतिक विचारधारा को अधिक प्रभावशाली पाने की स्थिति में दलबदल कर ले। इसके साथ ही वह मूल पार्टी के घोषणा पत्र के प्रतिनिधित्व के अधिकार से हाथ धो बैठता है। राजनीतिक नैतिकता की मांग है कि ऐसा नेता अपने पद से इस्तीफा देकर पुनः चुनाव लड़े । पिछले दशकों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जब राजीव गांधी के कार्यकाल में वी.पी.सिंह ने दल बदला था। उन्होंने इस्तीफा देकर फिर से चुनाव लड़ा । इसी प्रकार 1984 में कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री रामकृष्ण हेगड़े ने लोक सभा चुनावों में जनता दल की हार के बाद नैतिक आधार पर इस्तीफा दे दिया था। ये दोनों ही नेता उप-चुनावों में फिर से चुने गए थे।

गोवा और तेलंगाना के विधायकों ने अपने दलबदल के समर्थन में दलील देते हुए इसका ठीकरा अपनी मूल पार्टी के सिर फोड़ा है। अपने कृत्य पर पर्दा डालने के लिए उन्होंने पार्टी के विकास कायक्रमों पर भी आरोप लगा दिया है। कारण जो भी हो, एक विधायक को चाहिए कि वह मतदाता के विश्वास की लाज रखते हुए सबसे पहले अपने पद से त्यागपत्र दे।

राजनीतिक अर्थव्यवस्था में आए परिवर्तन ने राजनीतिक दलों के साथ-साथ राजनीतिक प्रक्रिया को भी बदल दिया है। चुनावों में लगाई जाने वाली बड़ी धनराशि ने चुनावों को एक महंगा और एकतरफा सौदा बना दिया है। राजनीतिक दल अब विचारों और धारणा का केन्द्र न रहकर संरक्षण देने वाले बन गए हैं। दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में तो उम्मीदवारी महज व्यापारियों और धनियों के बीच का खेल बनकर रह गई है। ये धनवान कानून को धता बताकर अपने व्यापारिक लाभ के लिए काम करते हैं। पार्टी प्रमुख और विधायकों के बीच चलने वाली यह साझेदारी एक-दूसरे के लिए लाभप्रद रहती है। धनवान उम्मीदवार पार्टी को फंड देते हैं, और बदले में पार्टी उन्हें गैरकानूनी कामों के लिए संरक्षण और सुविधाएं देती हैं। कभी-कभी तो इन धनवानों के लाभ के लिए कानून की दिशा ही मोड़ दी जाती है।

समय-समय पर इस व्यवस्था को चुनौती दी जाती है। जे.पी.आंदोलन, वी.पी. सिंह का जनमोर्चा, अन्न हजारे का भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन आदि इसी चुनौती के उदाहरण कहे जा सकते हैं। भूमि, आजीविका और पारिस्थितिकीय से जुड़े कई सामाजिक आंदोलन ऐसे रहे हैं, जो चुनावी राजनीति के प्रति लोगों के मोहभंग का परिणाम कहे जा सकते हैं। आगे भी ये होते रहेंगे।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित अमृत लाल के लेख पर आधारित। 19 जुलाई, 2019

AFEIAS